Toppersnotes®
Unleash the topper in you

# SET

## State Eligibility Test

## राज्य पात्रता परीक्षा

## इतिहास

**पेपर – 2 || भाग – 3**

SIERRA INNOVATIONS

# विषय-सूची


| क्र.सं. | आधुनिक भारत, इतिहास एवं शोध कार्य | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | ब्रिटिश नीतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण | 1 |
| 2. | सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन | 18 |
| 3. | सिक्ख सुधार आंदोलन | 37 |
| 4. | अंग्रेजो के विरूध्द प्रारम्भिक विद्रोह एवं 1287 का विद्रोह | 47 |
| 5. | 1857 का विद्रोह | 66 |
| 6. | 1861 से 1900 के दौरान ब्रिटिश नीतियां | 74 |
| 7. | भारतीय राष्टवाद का उदभव एवं विकास | 78 |
| 8. | कांग्रेस के गठन से पूर्व की राजनीतिक सस्थाएँ | 83 |
| 9. | भारतीय राष्टीय कांग्रेस की स्थापना | 91 |
| 10. | मुस्लिम लीग | 101 |
| 11. | उग्र राष्ट्रवाद, बंगाल विभाजन एवं स्वदेशी आन्दोलन | 104 |
| 12. | कांग्रेस का सुरत विभाजन | 114 |
| 13. | क्रान्तिकारी आन्दोलन | 116 |
| 14. | मोर्ले-मिंटों सुधार | 121 |
| 15. | बंगाल विभाजन | 123 |
| 16. | राष्टीय आन्दोलन का अन्तिम चरण | 130 |
| 17. | भारत में गांधीजी के प्रारंभिक सत्याग्रह | 132 |
| 18. | असहयोग आन्दोलन | 134 |
| 19. | साइमन कमीशन एवं नेहरू रिर्पोट | 142 |
| 20. | सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं गोलमेज सम्मेलन | 145 |
| 21. | भारत छोडो आन्दोलन | 152 |
| 22. | संविधान सभा का चुनाव और आंतरिक सरकार | 157 |
| 23. | भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम | 161 |
| 24. | देशी रियासतों का आजादी में योगदान | 161 |

| | | |
|---|---|---|
| 25. | स्वतन्त्रता पश्चात भारत | 168 |
| 26. | पंचवर्षीय योजनाएं एवं नियोजित औद्योगिकीकरण | 170 |
| 27. | विदेश नीति | 175 |
| 28. | भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण | 179 |


## इतिहास एवं शोध कार्य


| | | |
|---|---|---|
| 1. | ऐतिहासिक प्रणाली, शोध कार्य प्रणाली तथा इतिहास लेखन | 180 |
| 2. | इतिहास में वस्तुनिष्ठता एवं पूर्वाग्रह | 182 |
| 3. | अन्वेषणात्मक सक्रिया | 184 |
| 4. | इतिहास में आलोचना सश्लेषण एवं प्रस्तुति | 185 |
| 5. | इतिहास एवं सहायक विज्ञान | 187 |
| 6. | इतिहास की प्रकृति | 192 |
| 7. | इतिहास मे कारण कार्य सम्बंध और कल्पना | 193 |
| 8. | क्षेत्रीय इतिहास का महत्व | 194 |
| 9. | प्रस्तावित शोध का क्षेत्र | 198 |
| 10. | भारतीय इतिहास लेखन | 201 |
| 11. | इतिहास में विषय का चयन | 204 |
| 12. | शोध एवं निर्दिष्ट कार्य लेखन | 207 |
| 13. | क्लासिक युग और इतिहास लेखन | 211 |
| 14. | पुनर्जागरण | 213 |
| 15. | उतर आधुनिकतावाद | 218 |

# ब्रिटिश नीतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण

## ब्रिटिश नीतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण

मानव इतिहास में संभवतः भारत एकमात्र उदाहरण है जहां एक व्यापारिक कंपनी ने सरकार की बागडोर संभाली तथा निरंतर एक व्यापारिक कंपनी के रूप में बनी रही ।स्पष्ट रूप से कंपनी का पहला और अंतिम उद्देश्य लाभ कमाना ही रहा । शासन सत्ता सार्वजनिक कल्याण का साधन होने के बजाय लाभ को अधिकाधिक करने का साधन बन गयी । इसलिए कंपनी की नीतियों का परिणाम जमींदारों की शक्तिहीनता, आम आदमी की दरिद्रता और स्थानीय कारीगरों की दुर्दशा के रूप में सामने आया ।

## भारतीयों गांवों पर प्रभाव

ब्रिटिश शासन लागू होने से पहले भारतीय गांव समुदाय केंद्रित थे तथा प्रकृति में आत्मनिर्भर थे किंतु ब्रिटिश प्रशासन व्यवस्था ने मौजुदा प्रणाली को उल्टा कर दिया । ग्राम पंचायतें अपने पारंपरिक न्यायिक और कार्यकारी कार्यों से वंचित हो गई । सर्वाधिक विनाशकारी प्रभाव ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पडा जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है ।

- ब्रिटिश सरकार की रुचि केवल लगान में वृद्धि करने तथा उसका अधिकाधिक हिस्सा प्राप्त करने में थी । इसी लालच की वजह से अंग्रेजों ने देश के कई हिस्सों में भूमि की स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था लागू कर दी । इस व्यवस्था में सरकार की मांग तो स्थिर थी किंतु जमींदारों के द्वारा किसानों से वसूला जाने वाला लगान परिवर्तनशील था, अतएव कालांतर में लगान की दरों में अत्यधिक वृद्धि कर दी गयी । लगान अदा न करने पर किसानों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता था ।
- इससे किसान पर भूमि पर अपने पुश्तैनी अधिकारों से हाथ धो बैठे ।
- सरकार द्वारा जमीन की उर्वरता बढाने के लिये अत्यंत कम धन खर्च किया जाता था । जमींदार, जिन्हें किसानों को भूमि से बेदखल करने का अधिकार था अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे तथा लगान में अपने हिस्से को बढाने के लिये किसानों को बेगार (बलपूर्वक कार्य) करने हेतु विवश करते थे ।
- कृषि में अधिक धन लगाने हेतु सरकार की ओर से कृषकों को किसी तरह का प्रोत्साहन भी नहीं दिया जाता था ।
- कृषकों पर लगान का बोझ अधिक हो जाने पर वे साहूकारों व ऋण लेने हेतु बाध्य हो जाते थे । साहूकार, जो अधिकांशतः गांव के अनाज व्यापारी होते थे, काफी ऊंची दरों पर किसानों को ऋण देते थे तथा ऋण चुकाने हेत उन्हें अपने उत्पाद (अनाज) को निम्न दरों पर बेचने हेतु मजबूर करते थे । इन शक्तिशाली साहूकारों के प्रशासन एवं न्यायालय से अच्छे संबंध होते थे, जिसका उपयोग वे अपने विरुद्ध होने वाले मुकदमों के लिये करते थे ।

  इस प्रकार किसानों के ऊपर सरकार, जमींदार एवं साहूकारों का तिहरा बोझ होता था । अकाल एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय कृषकों की समस्यायें और भी बढ जाती थीं । अतः ब्रिटिश शासन की नीतियों से भारतीय कृषि पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पडा तथा कृषकों की दरिद्रता अत्यंत बढ गयी ।

## पुराने जमींदारों की तबाही तथा नयी जमींदारी व्यवस्था का उदय

वर्ष 1815 के अंत तक बंगाल की कुल भूमि का लगभग 50 प्रतिशत दूसरे हाथों में स्थानांतरित किया जा चुका था । इन नये हाथों में भूमि के जाने से जमींदारों के एक नये वर्ग का उदय हुआ तथा नये भू-संबंधों का विकास हुआ । जमींदारों के इस नये वर्ग के पास सीमित शक्तियां एवं अत्यल्प संसाधन थे तथा भूमि पर कब्जे के कारण यह वर्ग अस्तित्व में आया था । लगान व्यवस्था में बिचौलियों के बढने से प्रत्यक्ष जमींदारी का लोप हो गया तथा किसानों पर बोझ और ज्यादा बढ गया । भूमि की मांग बढने से इसकी कीमतों में वृद्धि हुई तथा किसानों की क्रय शक्ति से यह और दूर होने लगी । जमींदारों एवं किसानों के मध्य कोई परंपरागत समझौता न होने से इन जमींदारों ने कृषि के विकास के लिये न किसी प्रकार का निवेश किया और न ही इस कार्य में कोई रुचि ली । इन जमींदारों का हित ब्रिटिश शासन के चलते रहने में ही था और इसीलिये इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेजों का साथ दिया ।

## कृषि में स्थिरता एवं उसकी बर्बादी

कृषकों के पास न ही कृषि के साधन थे और न ही कृषि में निवेश करने के लिये धन था । जमींदारों का गांवों से कोई संबंध नहीं था तथा सरकार द्वारा कृषि तकनीक एव कृषि से संबंधित शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन अत्यल्प था । इन सभी कारणों से भारतीय कृषि का धीरे-धीरे पतन होने लगा तथा उसकी उत्पादकता बहुत कम हो गयी ।

## भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण

- उन्नसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय कृषि में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह था कृषि का वाणिज्यीकरण। इस समय तक कृषि कार्य जीविकोपार्जन हेतु किया जाता था, न कि व्यापारिक लाभों हेतु ।
- अब कृषि पर वाणिज्यिक प्रभाव स्पष्ट होने लगा । अब कुछ विशेष फसलों का उत्पादन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार के लिए होने लगा, न कि ग्रामीण उपयोग के लिए । मूंगफली, गन्ना, पटसन, कपास, तिलहन, तम्बाकू, मसालों, फलों तथा सब्जियों जैसी वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन बढ गया क्योकि ये फसलें अब खाद्यान्न की तुलना में अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगी थीं ।
- संभवतः बागान उद्योगों यथा-चाय, काफी, रबर एवं नील इत्यादि में तो कृषि का वाणिज्यीकरण अपने चरमोत्कर्ष में पहुंच गया । इन बागान उद्योगों का स्वामित्व लगभग यूरोपीयों के हाथों में था तथा इनके उत्पाद मुख्यतः अंतराष्ट्रीय बाजार में बेचने के उद्देश्य से ही तैयार किये जाते थे ।
- वाणिज्यीकरण और विशेषीकरण की इस प्रक्रिया को कई कारकों ने प्रोत्साहित किया :
    - रीतियों और परंपराओं के स्थान पर संविदा और प्रतियोगिता ।
    - एकीकृत राष्ट्रीय बाजार का अभ्युदय ।
    - देशी एवं विदेशी व्यापार में वृद्धि ।
    - रेलवे एवं सडक संचार साधनों से राष्ट्रीय मंडी का विकास ।
    - अंग्रेजी पूंजी के आगमन से विदेशी व्यापार में वृद्धि इत्यादि ।

## कृषि के वाणिज्यीकरण के प्रभाव

- भारतीय कृषकों के लिये कृषि का वाणिज्यीकरण एक विवशता थी । भूमि कर अत्यधिक होने से उसे अदा कर पाने में वह असमर्थ था । फलतः उसे साहूकारों से ऋण लेना पडता था, जिनकी ब्याज दरें अत्यधिक उच्च होती थीं । इस ब्याज को चुकाने के लिये उसे अपने उत्पाद को काफी कम मूल्य पर बेचना पडता था । कई बार तो उसे अपने ही अनाज को साहूकार के यहां बेचकर दोबारा जरूरत पडने पर दोगुने मूल्य पर उसे खरीदना पड जाता था ।

- कृषि का वाणिज्यीकरण होने से भारतीय कृषि मूल्यों पर विदेशी उतार-चढात्र का प्रभाव भी पडने लगा । उदाहरणार्थ 1860 के पश्चात कपास के मूल्यों में जो वृद्धि हुई उससे बिचौलियों को काफी लाभ प्राप्त हुआ, जबकि कृषकों को इसका कोई लाभ नहीं मिला ।
- इसी प्रकार 1866 में जब मंदी आयी तो इसकी मार किसानों पर पडी, जिसके फलस्वरूप गाँवों में किसान ऋण के बोझ में और दब गये, उनकी जमीनें नीलाम हो गईं और उन्हें अकाल का सामना करना पडा । परिणामतः दक्षिण भारत में बडे पैमाने पर किसान आंदोलन हुये । इस प्रकार कृषि के वाणिज्यीकरण से न तो कृषकों को कोई लाभ हुआ औन न ही कृषि उत्पादन में कोई वृद्धि हुई ।

## अकाल

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में जीवन यापन का मुख्य साधन खेती ही था । यह मुख्यतः अनिश्चिम वर्षा पर निर्भर था ।

- 1757 से 1947 के बीच भारत में 9 बडे अकाल पडे ।
- 1769-70 के अकाल से बंगाल, बिहार एवं उडीसा की एक तिहाई आबादी नष्ट को गई ।
- 1837-38 में, जिसमें समस्त उत्तरी भारत अकाल ग्रस्त हुआ 8 लाख व्यक्ति मरे ।
- 1861 में पुनः उत्तरी भारत में अकाल पडा जिसमें भारी संख्या में जान-माल की क्षति हुई ।
- 1866 में उडीसा में अकाल पडा जिसमें 10 लाख लोग मारे गए ।
- इसी तरह 1868-69 में राजपूताना और बुंदेलखंड में, 1873-74 में बंगाल, बिहार में व 1876 में संपूर्ण भारत में अकाल पडे ।
- अंग्रेजी शासनकाल में अकालों की बारंबारता एक महत्वपूर्ण समस्या थीं ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी के आकलन के अनुसार 1854 से 1901 के बीच लगभग 3 करोड लोग अकाल के कारण मरे। जहाँ वर्षा का अभाव, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाएँ अकालों का एक प्रमुख कारण रही, वहीं इसका सर्वाधिक गंभीर कारण औपनिवेशिक नीतियाँ थीं। इसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं -
- औपनिवेशिक नीति में अधिक-से-अधिक भू-राजस्व वसूली पर बल दिया गया। इसके फलस्वरूप किसान ऋण ग्रस्त होते गये और उन्हें बार-बार खाद्यानों के अभाव का सामना करना पडा।
- कृषि का वाणिज्यीकरण भी एक महत्वपूर्ण कारण था । इसमें किसानों ने नगदी फसलों को उपजाने पर अधिक बल दिया, इससे खाद्यानों का अभाव उत्पन्न हुआ तथा वाणिज्यीकरण का लाभ किसानों को न मिल कर महाजनों और बिचौलियों को मिला ।
- भू-राजस्व चुकाने और ऋण की अदायगी में विफलता के कारण किसानों की जमीनें महाजनों के हाथों में चली गई । इससे किसानों की आय घटी । इसका परिणाम यह हुआ कि कृषि उत्पादन और उत्पादकता दोनों ठप हो गई ।
- कृषि की अवनति के साथ-साथ उद्योग आदि में भी विकल्पों की कमी थी फलस्वरूप लोगों की आय में लगातार कमी होती चली गई।
- सरकार की प्रबंधन संबंधी विफलता भी अकाल का महत्वपूर्ण कारण साबित हुआ ।
- इस प्रकार उपरोक्त कारणों ने प्राकृतिक आपदाओं से अधिक तीक्ष्ण प्रभाव उत्पन्न किया जिसके कारण भारत में बारंबार अकालों की पुनरावृति हुई ।
- ब्रिटिश सरकार ने अकालों के समाधान के लिए विभिन्न आयोग का गठन किया और क्रमिक रूप से अकाल नीति विकसित की ।
- 1860-61 में कर्नल बेयर्ड स्मिथ समिति का गठन किया गया ।
- 1866 में जार्ज कॉलवेल समिति बनाई गई । इसने रोजगार सृजन पर बल दिया तथा यह सिफारिश की कि राहत कार्य सरकार अपने हाथों में ले ।

- 1880 में वायसराय लिटन द्वारा रिचर्ड स्ट्रेची आयोग बनाया गया। इस आयोग की सिफारिश पर 1883 में अकाल संहिता बनी जो 1886 में लागू हुई। इसके तहत एक अकाल कोष बनाया गया जिसमें प्रति वर्ष सरकार द्वारा एक करोड रुपये दिये जाने का प्रवधान किया गया।
- 1896-97 में बंगाल अकाल के बाद जॉन व्हाइट हेड आयोग बनाया गया जिसने भारतीय खाद्यान्न परिषद के गठन की सिफारिश की।
- इस प्रकार ब्रिटिश आकाल नीति धीमी गति से बहुत लम्बे समय में विकसित हुई तथा समस्या का व्यापक समाधान करने में विफल हुई फलतः भारत में अकालों के कई दुष्परिणाम सामने आए।
- इसका कृषि क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। पशुओं की मृत्यु, जमीन परती रहने से होने वाली क्षति और किसानों की जमा रकम नष्ट हो जाने से कृषि पर प्रतिकूल असर पडना स्वाभाविक था।
- अकाल के कारण किसानों की ऋण ग्रस्तता बढी।
- कृषि पर प्रभाव पडने से उद्योग-धंधों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा।
- भूमि हस्तांतरण की प्रक्रिया तीव्र हुई।
- भुखमरी, दरिद्रता और बेरोजगारी भारतीय समाज की एक बुनियादी सच्चाई बन गइ।

## भारत में दस्तकारी और हस्तशिल्प पर प्रभाव

चरण -1 जब भारतीय हस्तशिल्प और दस्तकारी उद्योग ब्रिटिश उत्पादों से श्रेष्ठता की स्थिति मे था।

- वर्ष 1600 से 1757 तक भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमिका एक व्यापारिक निगम की थी जो भारत में माल या बहुमूल्य धातुएँ लाती थी और उनके बदले कपडे, मसाले आदि भारतीय माल लेकर उन्हें विदेशों में बेचती थी।
- इस दौर में कम्पनी के कारण भारतीय निर्यात को बढावा और उत्पादन में वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

चरण-2 जब भारतीय हस्तशिल्प औ दस्तकारी उद्योग ब्रिटिश उत्पादों के बराबर था या उन्हें टक्कर दे सकता था

- भारत के साथ कम्पनी के व्यापारिक संबंधों में 1757 के प्लासी के युद्ध के बाद एक गुणात्मक परिवर्तन आया।
- बंगाल पर अपने राजनीतिक नियंत्रण का फायदा उठाते हुए कंपनी ने भारतीय व्यापार और उत्पादन पर एकाधिकार स्थापित करना प्रांरम्भ किया।
- कंपनी ने बंगाल के बुनकरों को अपना माल कम दामों तथा घाटे पर बेचने को विवश किया।
- इसके अतिरिक्त कई शिल्पकारों को कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया गया तथा भारतीय कारखानों में उनके काम करने पर रोक लगा दी गयी।
- कम्पनी ने अपने भारतीय या विदेशी प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों को बाहर कर दिया कंपनी ने कच्चे कपास की बिक्री पर एकाधिकार कर लिया तथा उसके लिए बंगाल के बुनकरों से मनमाने दाम वसूलने लगे।
- इस प्रकार कपास खरीदने वाले और बेचने वाले दोनों ही घाटे में रहे।
- ब्रिटेन में भारतीय बस्त्रों पर भारी आयात शुल्क भी देना पडता था।
- इस सभी प्रयासों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने अपने बढते हुए मशीनी उद्योग को संरक्षण देने का कार्य किया क्योंकि उसके माल अभी भी सस्ते और बेहतर भारतीय माल का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

चरण-3 जब भारतीय हस्तशिल्प और दस्तकारी उद्योग ब्रिटिश उत्पादों की तुलना में प्रतिस्पर्धी नहीं रह गया था।

- 1813 के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बिगडी तथा भारतीय दस्तकारी उद्योग से अब विदेशी बाजार ही नहीं वरन भारतीय बाजार भी छिन गए ।
- युद्ध और औपनिवेशिक शोषण से ब्रिटेन के पास पर्याप्त औद्योगिक पूंजी एकत्र हो गयी थी ।
- यह पूंजी व्यापारियों और उद्योगपति वर्ग के पास थी, न कि जमींदारों क पास जो इसे भोग विलास में खर्च करते ।
- जनसंख्या की वृद्धि ने सस्ते श्रम की आवश्यकताएँ पूरी की ।
- ब्रिटेन में एक ऐसी सरकार थी जिस पर व्यापारियों और उद्योगपतियों का प्रभाव था ।
- अधिक उत्पादन की मांग प्रौद्योगिकी विकास के द्वारा पूरी की गयी । सदियों पहले किये गए आविष्कारों का अब भरपूर उपयोग होने लगा ।
- औद्योगिकरण की प्रक्रिया में एक ऐसे नवीन वर्ग का उदय हुआ जिसकी दिलचस्पी ईस्ट इंडिया कंपनी की भ्रांति मुनाफा व्यापार में न होकर तैयार माल के उत्पादन और कच्चे माल के आयात में थी क्योंकि इस वर्ग का लाभ कारखानों के उत्पादन की देन थी ।
- इस वर्ग के दबाव की ही देन थी कि 1813 में कंपनी के व्यापारिक अधिकारों में कटौती हुई ।
- इसके पश्चात् ब्रिटिश शासन के द्वारा भारत के साथ विकृति पूर्ण मुक्त व्यापार नीति अपनायी गयी ।
- इस नीति के अंतर्गत भारत के दरवाजे तो विदेशी मालों के लिए खुले छोड दिए गए किंतु जो माल ब्रिटिश मालों से प्रतियोगिता कर सकते थे उन पद ब्रिटेन में प्रवेश के लिए भारी आयात शुल्क लगा दिए गए । यह उच्च आयात शुल्क तब तक जारी रहा जब तक उनका निर्यात लगभग बंद नहीं हो गया ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए जिन्हें निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है ।

- भारतीय हस्त शिल्पियों के पारंपरिक ग्रामीण समुदाय के साथ संबंध प्रभावित होने लग गए, क्योंकि गाँवों में भी मशीन से बनी वस्तुएँ पहुँचने लगीं ।
- अकालों के परिणाम स्वरूप लाखों लोग मारे गए जिनमें दस्तकार और शिल्पी भी थे ।
- पारंपरिक रूप से भारतीय हस्तशिल्प उद्योग गिल्ड पद्धति के द्वारा नियंत्रित होता था । ब्रिटिश शासन के आगमन के पश्चात गिल्ड व्यवस्था टूट गयी । अतः शिल्पकारों के कार्य पर निगरानी और अनुशासन रखने वाला कोई नहीं रहा ।
- अनुभव और प्रशिक्षण का भी अभाव हो गया जिससे उत्तम कोटि की वस्तुएँ बनना बंद हो गई ।

## 10.1.8 ब्रिटिश शासन और भारत में शिक्षा प्रणाली

### 10.1.8.1 विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना ।

- प्रारंभिक 60 वर्षो तक ईस्ट इंडिया कंपनी एक विशुद्ध व्यापारिक कंपनी थी । उसका उद्देश्य व्यापार करके केवल अधिक से अधिक लाभ कमाना था तभा देश में शिक्षा को प्रोत्साहित करने में उसकी कोई रुचि नहीं थी । इन वर्षो में शिक्षा के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु जो भी प्रयास किये गए, वे व्यक्तिगत स्तर पर ही किये गए थे ।

इन प्रयासों के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं-

- 1781 में वारेन हेटिंग्स ने कलकता मदरसा की स्थापना की । इसका उद्देश्य, मुस्लिम कानूनों तथा इससे संबंधित अन्य विषयों की शिक्षा देना था ।
- 1791 में बनारस के ब्रिटिश रेजिडेन्ट, जोनाथन डंकन के प्रयत्नों से बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना की गयी । इसका उद्देश्य हिन्दू बिधि एव दर्शन का अध्ययन करना था ।

- वर्ष 1800 में लार्ड वैलेजली ने कंपनी के असैनिक अधिकारियों की शिक्षा के लिये फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। इस कालेज में अधिकारियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा भारतीय रीति-रिवाजों की शिक्षा भी दी जाती थी। (किंतु 1802 में डायरेक्टरों के आदेश पर यह कालेज बंद कर दिया गया।)
- कलकत्ता मदरसा एव संस्कृत कालेज में शिक्षा पद्धति पर ढांचा इस प्रकार तैयार कियागया था कि
- कंपनी को ऐसे शिक्षित भारतीय नियमित तौर पर उपलब्ध कराये जा सकें, जो शास्त्रीय और स्थानीय भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हों तथा कंपनी के कानूनी प्रशासन में उसकी मदद कर सकें।
- न्याय विभाग में अरबी, फारसी और संस्कृत के ज्ञाताओं की आवश्यकता थी ताकि वे लोग न्यायालयों में अंग्रेज न्यायाधीशों के साथ परामर्शदाता के रूप में बैठ सकें तथा मुस्लिम एवं हिन्दू कानूनों की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय रियासतों के साथ पत्र-व्यवहार के लिये भी कंपनी को इन भाषाओं के विद्वानों की आवश्यकता थी।

## 1813 के चार्टर एक्ट से प्रशंसनीय शुरुआत

- इस चार्टर एक्ट में, भारत में स्थानीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने तथ देश में आधुनिक विज्ञान के ज्ञान को प्रारंभ एव उन्नत करने के लिये कंपनी द्वारा प्रतिवर्ष 1 लाख रुपये की राशि स्वीकृत की गयी थी। किंतु इस राशि को व्यय करने के प्रश्न पर विवाद हो जाने के कारण 1823 तक यह राशि उपलब्ध नहीं कराई गयी।
- इस बीच कुछ प्रबुद्ध भारतीयों ने व्यक्तिग स्तर पर अपने प्रयास जारी रखे तथा शिक्षा के विकास एवं शिक्षा संस्थानों की स्थापना के लिये भारी अनुदान दिया। इनमें राजा राम मोहन राय का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने 1817 में कलकता हिन्दू कालेज की स्थापना के लिये भारी अनुदान दिया। शिक्षित बंगालियों द्वारा स्थापित इस कॉलेज मे अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती थी तथा पाश्चात्य विज्ञान और मानविकी पढाई जाती थी। सरकारके कलकत्ता, आगरा, और बनारस में तीन संस्कृत कालेज स्थापित किये। इसके अतिरिक्त यूरोपीय वैज्ञानिक पुस्तकों का प्राच्य भाषाओं में अनुवाद करने के लिये भी अनुदान दिया गया।

## आंग्ल-प्राच्य विवाद

- लोक शिक्षा की सामान्य समिति मे दो दल थे। एक दल प्राच्य शिक्षा समर्थन था जिसके नेता एच. टी. प्रिन्सेप थे और दूसरा आंग्ल शिक्षा समर्थक।
- प्राच्य शिक्षा समर्थकों का तर्क था कि जहां रोजगार के अवसरों में वृद्धि के लिए पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य के अध्ययन को बढावा दिया जा रहा है, वहां इसके स्थान पर परंपरागत भारतीयों भाषाओं एवं साहित्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- दूसरी और आंग्ल-शिक्षा समर्थकों का मानना था कि भारतीयों को आधुनिक यूरोपीय पद्धति की शिक्षा ही प्रदान की जानी चाहिए, इस वर्ग मे शिक्षा के माध्यम को लेकर विवाद हो गया तथा वे दो धडों में विभक्त हो गये। एक धडा, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को बनाए जाने पर जोर दे रहा था तो दूसरा धडा, शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाए जाने का पक्षधर था।
- आंग्ल शिक्षा समर्थकों ने निष्कर्ष निकाला कि पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दुर्बलता को दूर किया जा सकता है।
- मिशनरियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार से भारतीयों की उनके परंपरागत धर्म में आस्था समाप्त हो जाएगी तथा वे ईसाई धर्म ग्रहण कर लेंगे। सीमरपुर के मिशनरी इस क्षेत्र में बहुत उत्साही थे।
- भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के अनुसार प्रचलित परंपरागत शिक्षा प्रणाली ने अंधविश्वास, डर और सत्तावाद को जन्म दिया है।

## आंग्ल-प्राच्य विवाद का समापन

- गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य लॉर्ड मैकाले ने आंग्ल-दल का समर्थन किया ।
- 2 फरवरी, 1835 को अपने महत्वपूर्ण स्मरण-पत्र में उसने लिखा कि 'सरकार के सीमित संसाधनों के मद्देनजर पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य की शिक्षा के लिए, माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा ही सर्वोतम है ।
- मैकाले ने कहा कि "भारतीय साहित्य का स्तर यूरोपीय साहित्य की तुलना में अत्यंत निम्न है ।" उसने भारतीय शिक्षा पद्धति एवं साहित्य की आलोचना करते हुए अंग्रेजी भाषा का पूर्ण समर्थन किया ।

मैकाले के इन सुझावों के पश्चात् सरकार ने शीघ्र ही स्कूलों एवं कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना दिया ।

### प्रभाव

- सरकार ने बडी संख्या में प्राथमिक स्कूल खोलने की बजाय अंग्रेजी स्कूल और कॉलेज खोले ।
- सरकार को और कुछ नहीं तो कम से कम शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए कॉलेजों की स्थापना करनी चाहिए थी परन्तु इसने ऐसा नहीं किया ।
- आम जनता को भी शिक्षित किया जाना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं हुआ ।
- सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि वह शिक्षा पर सीमित संसाधनों को ही खर्च करना चाह रहीं थी ।
- सरकार का विश्वास था की भले ही प्रारंभ में शिक्षा का लाभ उच्च  और मध्य वर्ग के लोगों तक ही सीमित रहे किन्तु धीरे-धीरे इसक लाभ जन साधारण तक पहुंचेगा । इसे ही अधोमुखी निस्यंदन सिद्धांत या विप्रवेशन सिद्धांत के रूप में जाना जाता है ।

## थॉमसन के प्रयास

उत्तर -पश्चिमी प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के लेफ्टिनेंट गवर्नर जेम्स थॉमसन (1843-53) ने देशी भाषाओं द्वारा ग्राम शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई । अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाले छोटे-छोटे स्कूलों को बंद कर दिया गया । अब केवल कालेजों  में ही अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम रह गयी । गांव के स्कूलों में कृषि  विज्ञान तथा क्षेत्रमिति जैसे उपयोगी विषयो का अध्ययन प्रारंभ किया गया । अध्ययन के लिए देशी भाषाओं को माध्यम के रूप में चुना गया । इस योजना के पीछे थॉमसन का उद्देश्य यह था कि नवगठित राजस्व तथा लोक निर्माण विभागों के लिये शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त एक शिक्षा विभाग का भी गठन किया गया ।

## चार्ल्स वुड डिस्पैच, 1854

"भारतीय शिक्षा का मैग्ना-कार्टा" कहा जाने वाला चार्ल्स वुड का यह डिस्पैच भारत में शिक्षा के  विकास से संबंधित पहला विस्तृत प्रस्ताव था । इस डिस्पैच की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं । -

- इसमें सरकार से कहा गया कि वह जनसाधारण की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें । इस प्रकार अधोमुखी निस्यन्दन सिद्धांत कागजों में ही सिमट कर रह गया ।
- इसने सुझाव दिया कि गांवों में देशी-भाषाई प्राथमिक पाठशालायें स्थापित की जाएं, उनसे ऊपर जिला स्तर पर आंग्ल-देशी-भाषाई हाईस्कूल तथा लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर तीनों प्रेसीडेंसी शहरों-बंबई, कलकता और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित कियें जाएँ । इन विश्वविद्यालयों में एक कुलपति, एक सीनेट और उसके अधि-सदस्य होंगे । इन सभी की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाएगी । ये विश्वविद्यालय परीक्षाएं आयोजित करेंगे तथा उपाधियाँ देंगे ।
- इसने उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी तथा स्कूल स्तर की शिक्षा का माध्यम देशी भाषाओं को बनाए जाने का सुझाव दिया ।

- इसने स्त्री शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा की आवयकता पर बल दिया तथा तकनीकी विद्यालयों एव अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की सिफारिश की ।
- इस क्षेत्र में निजी प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने के लिये अनुदान सहायता की पद्धति चलाने की सिफारिश भी इसने की । कंपनी के पांचों प्रांतों में एक-एक निदेशक के अधीन लोक शिक्षा विभाग की स्थापना की गयी । इस विभाग का कार्य शिक्षा की उन्नति एवं उसके प्रचार-प्रसार की समीक्षा करना तथा सरकार को प्रतिवर्ष इस संबंध में रिपोर्ट भेजना था ।
- इसने इस बात पर बल दिया कि सरकारी शिक्षण संस्थानों में दी जाने वाली शिक्षा, धर्मनिरपेक्ष हो
- इसने इस बात की घोषणा की कि सरकार की शिक्षा नीति का उद्देश्य पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार है । 1857 में कलकता, बंबई तथा मद्रास में विश्वविद्यालय खोले गये तथा बाद में सभी प्रांतों में शिक्षा विभाग का गठन भी कर दिया गया । 1840 से 1858 के मध्य स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में किये गये प्रयासों को सार्थक परिणति तब मिली जब जे.डी. बेथुन द्वारा 1849 में कलकता में बेथुन स्कूल की स्थापना की गयी । बेथुन, शिक्षा परिषद के अध्यक्ष थे । मुख्यतः बेथुन के प्रयत्नों द्वारा कुछ अन्य महिला पाठशालाओं की स्थापना भी गई और इन्हें सरकार की अनुदान और निरीक्षण पद्धति के अधीन लाया गया ।
- चार्ल्स वुड द्वारा अनुमोदित विधियाँ एव आदर्श लगभग 50 वर्षों तक प्रभावी रहे । इसी काल में भारतीय शिक्षा का तीव्र गति से पाश्चात्यीकरण हुआ तभा अनेक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की गई । इस काल में शिक्षण संस्थाओं में प्रधानाध्यापक एवं आचार्य मुख्यतया यूरोपीय ही नियुक्त किये जाते थे । ईसाई मिशनरी संस्थाओं ने भी इस दिशा में अपना योगदान दिया । धीरे-धीरे निजी भारतीय प्रयत्न भी इस दिशा में किये जाने लगे ।

## हन्टर शिक्षा अयोगत्र 1882-83

क्षेत्र में हुई प्रगति की समीक्षा करने के लिये 1882 मे सरकार ने डब्ल्यू.डब्ल्यू. हन्टर की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया । इस आयोग का कार्य प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा करना और इनमें सुधार और विस्तार के लिए आवश्यक अनुशंसाएँ करना था । विश्वविद्यालयों की समीक्षा करना इसका कार्य नहीं था । इसके सुझाव निम्नलिखित थेः-

1. सरकार को प्राथमिक शिक्षा के सुधार और विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । यह शिक्षा स्थानीय भाषा में हो और उपयोगी विषयों में हो । निजी प्रयत्न का स्वागत हो परन्तु प्राथमिक शिक्षा उसके बिना भी दी जानी चाहिए । इस प्राथमिक पाठशालाओं का नियंत्रण नव संस्थापित जिला और नगर बोर्डों को दे दिया जाए । शिक्षा के लिये वे उपकर भी लगा सकते थे ।
2. माध्यमिक शिक्षा के दो खण्ड हों, एक में साहित्यिक शिक्षा जो विश्वविद्यालय की प्रवेश के लिये विद्यार्थी तैयार करे और दूसरी व्यावहारिक ढंग की जो विद्यार्थियों को व्यावसायिक तथा व्यापारिक जीवन के लिए तैयार करे ।
3. निजी प्रयत्नों को शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णरूपेण बढावा मिलना चाहिए । इसके लिये सहायता अनुदान में उदारता तथा सहायता प्राप्त पाठशालाओं को सरकारी पाठशालाओं के बराबर मान्यता प्राप्त करने इत्यादि के लिए अवसर होने चाहिए । जितना शीघ्र हो सके सरकार को माध्यमिक और कॉलेज शिक्षा से हट जाना चाहिए ।
4. आयोग ने प्रेसिडेंसी नगरों (बम्बई, कलकता और मद्रास) के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानो पर महिला शिक्षा के पर्याप्त प्रबंध न होने पर खेद प्रकट किया और महिला शिक्षा को बढावा देने को कहा ।

इस आयोग द्वारा दिए गए सुझावों के फलस्वरूप दानदाताओं के विशेष सहयोग से अगले 20 वर्षों में माध्यमिक और कॉलेज शिक्षा का अभूतपूर्व विस्तार हुआ । हालांकि साम्प्रदायिक शिक्षण संस्थाओं का निर्माण भी इसी समय आरम्भ हुआ । पाश्चात्य ज्ञान के अतिरिक्त भारतीय तथा प्राच्य भाषाओं के पठनपाठन में भी विशेष रुचि देखने को मिली । इसके अतिरिक्त अध्यापन तथा परीक्षा विश्वविद्यालय भी बनने लगे । 1882 मे पंजाब और 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्थापित किये गय ।

## भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 1904

कर्जन ने शिमला में समस्त भारत के उच्चतम शिक्षा और विश्वविद्यालय अधिकारियों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन कर उद्देश्य भारत में शिक्षा के सभी क्षेत्रों की समीक्षा करना तथा शिक्षा के लिए एक नयी योजना बनाना था। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप एक आयोग सर टॉमस रैले की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग का उद्देश्य विश्वविद्यालयों की स्थिति का अनुमान लगाना था। और उनके संविधान तथा कार्यक्षमता के विषय में सुझाव देना था। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा इस आयोग के कार्यक्षेत्र में नहीं थे। इस आयोग की अनुशंसाओं के फलस्वरूप 1904 मे भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया। इसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थेः-

1. विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे अध्ययन तथा शोध के लिए प्राध्यापकों तथा व्याख्याताओं की नियुक्ति का प्रबंध करें, पाठशालाओं और पुस्तकालय स्थापित करें और विद्यार्थियों को सीधे शिक्षा देने का भार ऊपर ले।
2. विश्वविद्यालय के उपसदस्यों की संख्या 50 से कम और 100 से अधिक नहीं होनी चाहिए और इनकी सदस्यता आजीवन न होकर मात्र 6 वर्ष तक के लिए होनी चाहिए।
3. उपसदस्य मुख्य रूप से सरकार द्वारा मनोनीत होने चाहिए। चुन हुए सदस्यों की संख्या, कलकता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयों में अधिकतम 20 और शेष में 15 होनी चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों पर सरकार का नियंत्रण बढा दिया गया और सरकार को सीनेट द्वारा पारित प्रस्तावों पर निषेधाधिकार दिया गया। सरकार सीनेट द्वारा बनाए नियमों में परिवर्धन अथवा संधोधन कर सकती थी और यदि चाहे तो नए नियम भी बना सकती थी।
5. इस अधिनियम द्वारा अशासकीय कॉलेजों पर सरकार का और अधिक कठोर नियंत्रण कर दिया गया अर्थात् सम्बद्धता की शर्तें अधिक कठोर हो गईं और सिंडीकेट को कॉलेजों का समय-समय पर निरीक्षण करने का भार सौंपा गयां इन कॉलेजों को अपनी कार्यक्षमता उचित स्तर पर रखनी होगी और सम्बद्धता के लिए सरकारी स्वीकृति आवश्यक कर दी गई।
6. गवर्नर-जनरल को इन विश्वविद्यालयों की क्षेत्रीय सीमाएं निश्चित करने का अधिकार दे दिया गया। विधान परिषद के अन्दर और बाहर राष्ट्रवादी तत्वों ने इस अधिनियम की कडी आलोचना की। यहां तक कि 1917 में सैंडलर आयोग ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया कि 1904 के अधिनियम से "भारतीय विश्वविद्यालय संसार मे सब से अधिक पूर्णतया सरकारी विश्वविद्यालय बन गए थे" परन्तु कर्जन की इस नीति का यह परिणाम अवश्य हुआ कि 1902 से 5 लाख रुपया वार्षिक पांच वर्ष के लिए विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए निश्चित किया गया और इसके पश्चात सरकारी अनुदान सरकारी नीति की एक नियमित विशेषता बन गई।

21 फरवरी, 1913 का शिक्षा नीति पर सरकारी (Government Resolution on Education Policy) प्रस्ताव बडौदा जैसी प्रगतिशील रियासत ने अपने यहां अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा 1906 में आरम्भ कर दी थी। 1910 से 1910 तक विधान परिषद में गोखले एवं अन्य राष्ट्रवादियों से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत से प्रयत्न किए। 21, फरवरी 1913 के प्रस्ताव से सरकार ने अनिवार्य शिक्षा के सिद्धांत को तो स्वीकार नहीं किया। अपितु निरक्षरता समाप्त करने की नीति को अवश्य स्वीकार किया। उसने प्रान्तीय सरकारों को सला ह दी कि वह समाज के निर्धन तथा अधिक पिछडे हुए वर्ग को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयत्नों को भी समर्थन दिया गया। माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठशालाओं को भी अधिक उत्तम बनाने का सुझाव दिया गया। विश्वविद्यालय के सम्बंध में यह सुझाव स्वीकार किया गया कि प्रत्येक प्रान्त में एक विश्वविद्यायल अवश्व अवश्य होना चाहिए और विश्वविद्यालयों को शिक्षण कार्य अधिकारिक करना चाहिए।

सेडलर विश्वविद्यलय आयोग, 1917–19 – 1917 **(Sadler University Commission)** में कलकता विश्वविद्यालय की समस्याओं का अध्ययन कर इसकी रिपोर्ट देने के लिए सरकार ने एम.ई. सैडलर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया । इस आयोग के सदस्य दो भारतीय सर आशुतोष मुकर्जी और जियाउद्दीन अहमद भी थे । इस आयोग ने प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा व्यवसाी का गहन अध्ययन किया । इस आयोग का यह विचार था कि यदि विश्वविद्यालय की शिक्षा का सुधार करना है तो माध्यमिक शिक्षा का सुधार आवश्यक है । यद्यपि यह रिपोर्ट केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय के विषय में थी परन्तु यह अन्य भारतीय विश्वविद्यालयों के विषय में भी सत्य थी ।

इसकी निम्नलिखित सिफारिशें थीं–

1. स्कूल की शिक्षा 12 वर्ष की होनी चाहिए और विद्यार्थियों को हाई स्कूल के पश्चात् नहीं अपितु उत्तर माध्यमिक परीक्षा (intermediate examination) के पश्चात विश्वविद्यालय में भरती होना चाहिए । इसके लिए सरकार को उत्तर माध्यमिक प्रकार के महाविद्यालय (Intermediate College) बनाने चाहिए। ये महाविद्यालय चाहे तो स्वतंत्र संस्था के रूप में रहें अथवा हाई स्कूल से सम्बन्धित रहें । इनके प्रशासन तथा नियन्त्रण के लिए एक माध्यमिक तथा उत्तर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के गठन का सुझाव दिया गया ।
2. उत्तर माध्यमिक शिक्षा चरण के पश्चात स्नातक (Becholor) की उपाधि (degree) के लिए शिक्षा तीन वर्ष की होनी चाहिए । प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए प्रावीण्य (Honours) पाठ्यक्रम और साधारण (pass) पाठ्यक्रम पृथक होना चाहिए ।
3. विश्वविद्यालयों के नियम बनाने में कठोरता नहीं होनी चाहिए ।
4. पुराने, सम्बद्ध विश्वविद्यायों (affiliating universities) जिनमें कॉलेज दूर–दूर बिखरे होते थे, के स्थान पर केन्द्रित एकाकी आवामिक अध्यापन और स्वयत्तता पूर्ण (Unitary-resdential-teacing and autonomous) संस्थाए बननी चाहिए । कलकत्ता विश्वविद्यालय पर भार कम करने के लिए ढाका में एकाकी तथा अध्यापन (unitary and teaching) विश्वविद्यालय स्थापित किया जाए और इसी प्रकार यह प्रयत्न होना चाहिए कि अन्य विश्वविद्यालय भी शिक्षा के केन्द्र बन सकें ।
5. महिला शिक्षा के लिए सुविधाओं का प्रसार होना चाहिए और कलकत्ता विश्वविद्यालय में महिलाओं की शिक्षा के लिए एक विशेष बोर्ड बनना चाहिए ।
6. अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए प्रचुर सुविधाएँ होनी चाहिए । और इसके लिए ढाका और कलकत्ता विश्वविद्यालय में शिक्षा विभाग स्थापित किए जाने चाहिए ।
7. विश्वविद्यालय को यह भी कहा गया कि वह व्यापारिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में पाठ्यक्रमों का प्रबंध करे और उनके लिए अध्ययन तथा अभ्यास प्राप्त करने का प्रबंध करके डिप्लोमा तथा स्नातक की उपाधि प्राप्त करने का प्रबंध करें । इसी प्रकार विश्वविद्यालयों को व्यावसायिक कॉलेज भी खोलने चाहिए ।

   1916 और 1921 के बीच नए विश्वविद्यालय मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ, ढाका, लखनऊ और उस्मानिया अस्तित्व में आए । 1920 में सरकार ने सैडलर आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों को सभी प्रान्तीय सरकारों पर भी लागू करने का आग्रह किया ।

## द्वैध शासन के अन्तर्गत शिक्षा (Education Under Dyarchy)

- 1919 के मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों के अधीन प्रान्तों में शिक्षा विभाग निर्वाचित मंत्रियों के नियंत्रण में दे दिया गया ।
- केंद्रीय सरकार ने अब प्रत्यक्षतः शिक्षा में रुचि रखनी बंद कर दी और इस विभाग को अन्य विभागों में मिला दिया ।
- शिक्षा के लिए केन्द्रीय अनुदान जारी रखना ।

- वित्तीय कठिनाईयों के कारण प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षा योजनाओं को हाथ में नहीं लिया था ।

हार्टोग समिति, 1929 – 1929 में भारतीय वैधानिक आयोग (Indian Statutory Commission) ने सर फिलिप हार्टोग की अध्यक्षता में एक सहायक समिति नियुक्त की जिसे शिक्षा के विकास पर रिपोर्ट देने को कहा गया । इस समिति की सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

1. इसने प्राथमिक शिक्षा के राष्ट्रीय महत्व पर बल दिया परन्तु शीघ्र प्रसार अथवा अनिवार्यता की निन्दा की । सुधार और एकीकरण (improvement and consolidation) की नीति की सिफारिश की ।
2. माध्यमिक शिक्षा के विषय में कहा गया कि इसमें मैट्रिक परीक्षा पर ही बल दिया गया है । बहुत से अनुचित विद्यार्थी इसको विश्वविद्यालय शिक्षा का मार्ग समझते हैं । इसने सिफारिश की कि ग्रामीण वृत्ति (rural pursuits) के विद्यार्थियों को वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल स्तर पर ही रोका जाए । और कॉलेज प्रवेशों पर रोक लगाई जाए और उन्हें व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा दी जाए ।
3. विश्वविद्यालय शिक्षा की दुर्बलताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया गया और विवेकहीन प्रवेशों की आलोचना की गई जिससे शिक्षा का स्तर गिरता है । यह सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालय शिक्षा को सुधारने का पूर्ण प्रयत्न किया जाए और विश्वविद्यालय अपने कर्तव्य तक ही अपने आपको सीमित रखें और जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं, उन्हें अच्छी और उच्च शिक्षा दी जाए ।

प्राथमिक (मूल) शिक्षा की वर्धा योजना – भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार प्रान्तों को स्वायत्तता दे दी गई और लोकप्रिय मंत्रिमण्डल 1937 से कार्य करने लगे । 1937 मे महात्मा गांधी ने अपने पत्र हरिजन में लेखों की एक श्रृंखला प्रकशित की और एक शिक्षा योजना का प्रस्ताव दिया जिसे मौलिक अथवा आधार शिक्षण अथवा वर्धा योजना संज्ञा दी गई है । जाकिर हुसैन समिति ने इस योजना का ब्यौरा प्रस्तुत किया और कई शिल्पों के लिए पाठ्यक्रम तैयार किए । इसने अध्यापकों के प्रशिक्षण, पर्यपेक्षण, तथा प्रशासन के सुझाव भी दिए । योजना का मूलभूम सिद्धान्त "हस्त उत्पादक कार्य" (manual productive work) था, जिससे शिक्षकों के वेतन का भी प्रबंध हो जाता । इसके अन्तर्गत विद्यार्थी को मात्भाषा में सात वर्ष तक विद्याध्ययन करना था । द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने और मंत्रीमडलों के त्यागपत्र देने से यह योजना खटाई में पड गई । इस कार्य को 1947 के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने हाथ में लिया ।

शिक्षा की साजेण्ट योजना– 1944 में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (Central Advisory board of Education) ने एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की जिसे प्रायः सार्जेण्ट योजना कहा जाता है । सर जान सार्जेण्ट भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार थे । इस योजना के अनुसार :

- ग्यारह से सत्रह वर्ष के बच्चों के लिए 6 वर्ष का पाठ्यक्रम बनाया गया ।
- दो प्रकार के उच्च विद्यालय– एक विद्या विषयक और दूसरा तकनीकि एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए योजना में शामिल थे ।
- इस योजना में इण्टरमीडियट श्रेणी को समाप्त करने की व्यवस्था की गई थी ।
- 40 वर्ष के अन्दर की शिक्षा के पुनर्निमाण कार्य को अन्तिम रूप देना था, किंतु कालांतर में खेर समिति ने इस समय सीमा को घटाकर 16 वर्ष कर दिया गया ।

  'सार्जेण्ट योजना' के बाद 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया और इसी के साथ भारतीय शिक्षा में ब्रिटिश काल भी समाप्त हो गया ।

### विश्लेषण

ब्रिटिश राज के अधीन भारत में पाश्चात्य ज्ञान या अन्य किसी प्रकार के ज्ञान के प्रसार हेतु तमाम दावों के बावजूद कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया । जो भी प्रयास किये गए उनकी पृष्ठभूमि में लोक कल्याण की भावना ना होकर औपनिवेशिक हितों को साधना था । औपनिवेशिक हितों का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत किया जा सकता है -

- प्रशासन का खर्च कम करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था । शिक्षित भारतीय यूरोप से कर्मचारियों को लाने की अपेक्षा सस्ते पडते थे ।
- सरकार की योजना जनसाधारण में से एक तबकि को शिक्षित कर एक ऐसी श्रेणी बनाने की थी जो "रक्त एवं रंग से भारतीय हो परंतु अपने विचार, नैतिक, मापदण्ड, प्रज्ञा एवं प्रवृत्ति से अंग्रेज हो ।"
- शिक्षित भारतीय ईंग्लैंड में बनी वस्तुओं के बाजार का भारत में विस्तार करेंगे ।
- यह श्रेणी ऐसी हो कि यह सरकार तथा जन-साधाण के बीच दुभाषिये (interpreters) की भूमिका निभा सके । इस प्रकार पाश्चत्य विज्ञान तथा साहित्य का ज्ञान जनसाधारण तक पहुंच जायेगा ।
- पाश्चत्य शिक्षा भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करेगी ।

### परिणाम

- परंपरागत शिक्षा प्रणाली समाप्त हो गयी ।
- 1844 के एक सरकारी आदेशानुसार सरकारी रोजगार के लिए आवेदन करने वालों को अंग्रेजी का ज्ञान होना आवश्यक था । इससे अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल अधिक लोकप्रिय हो गए ।
- भारत साक्षरता के मामले में सदियों पीछे चला गया ।
- अंग्रेजी के उपर अधिक बल ने जनता में शिक्षा का प्रसार नहीं होने दिया फलस्वरूप शिक्षित भारतीयों और अशिक्षित भारतीयों के बीच भाषा तथा संस्कृति की खाई उत्पन्न हो गयी ।
- शिक्षा काफी महंगी थी, अतः धनी वर्गों और शहरी लोगों का इस पर एकाधिकार हो गया ।
- लडकियों की शिक्षा की बिलकुल अवहेलना की गई थी, क्योंकि सरकार चिंतित थी कि रुढिवादी भावनाओं पर चोट न पहुँच ।
- विदेशी अधिकारियों की नजर में स्त्री-शिक्षा की कोई तात्कालिक उपयोगिता नहीं थी, क्योंकि स्त्रियों को सरकारी दफ्तरों में क्लर्क नहीं बनाया जा सकता था ।
- कंपनी के प्रशासन में वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा की भी अवहेलना की गयी ।

## स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का विकास

राधाकृष्णन आयोग 1948-49- नवम्बर 1948 मे सरकार ने डॉक्टर राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयेग नियुक्त किया जिसे विश्वविद्यालय शिक्षा पर अपनी रिपोर्ट देनी थी और उसके सुधार के लिए अपनी सिफारिशें देनी थीं । अगस्त 1949 में दी गई इस रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं ।

1. विश्वविद्यालय पूर्व 12 वर्ष का अध्ययन ।
2. विश्वविद्यालयों में परीक्षा दिनों के अतिरिक्त कम से कम 180 दिन पढाई होनी चाहिए जो 11-11 सप्ताहों के तीन सत्रों में बंटी होनी चाहिए ।
3. उच्च शिक्षा की तीन मुख्य उद्देश्य होने चाहिए - सामान्य शिक्षण, संस्कारी शिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा इसमें पहली शिक्षा पर अधिक बल दिया जाना चाहिए क्योंकि अब तक इसके महत्व को समझा नहीं गया था । इसी प्रकार कृषि, शिक्षा शास्त्र, अभियांत्रिकी तथा तकनीकी, विधि और चिकित्सा विज्ञान पर अधिक बल देना चाहिए । वर्तमान अभियांतत्रिकी और तकनीकी संस्थाओं को राष्ट्रीय संपति मानना चाहिए और उनके सुधार के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

4. प्रशासनिक सेवाओं के लिए विश्वविद्यालय की स्नातक की उपाधि आवश्यक नहीं होनी चाहिए ।
5. चूंकि स्नातकीय उपाधि के लिए तीन वर्ष लगते हैं अतएव यह वांछनीय नहीं है कि सभी वर्षों के कार्य की हम एक परीक्षा से ही विवेचना करें । यथासंभव भिन्न-भिन्न विषयों की भिन्न-भिन्न स्तरों पर परीक्षा हो ।
6. सभी विश्वविद्यालयों के स्तर एक समान किए जाएं और ऊंचे उठाए जाएं । शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया जाए ।
7. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के वेतनों में वृद्धि की जाए ।
8. एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाया जाए जो देश में विश्वविद्यालय शिक्षा की देख-रेख करे ।

**विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)** - राधाकृष्णन आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाया गया । इसे संसद के अधिनियम के अनुसार एक स्वायत्तत वैधानिक स्थिति प्रदान की गयी ।

**कोठारी शिक्षा आयोग** 1964-66- शिक्षा के सभी पक्षों तथा स्तरों के विषय में राष्ट्रीय नमूने की रूपरेखा, साधारण सिद्धांत तथा नीतियों की रूपरेखा बनाने के उद्देश्य से जुलाई 1964 में डॉक्टर डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया गया । प्रमुख देशों के शिक्षाशास्त्री तथा वैज्ञानिक इससे समबद्ध किए गए ।

## आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए

1. शिक्षा के सभी स्तरों पर सामान्य शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में समाज सेवा और कार्य अनुभव जिसमें हाथ से काम करने तथा उत्पादन अनुभव इत्यादि सम्मिलित हो, आरम्भ किए जाने चाहिए ।
2. नैतिक शिक्षा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने पर बल दिया गया । विद्यालयों को अपने इस उत्तरदायित्व को समझना चाहिए कि उन्हें युवकों को विद्यालय के संसार से कार्य तथा जीवन के संसार में ले जाने में सहायता देनी है ।
3. माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाए ।
4. उन्नत अध्ययन केंद्रों (Centres of Advanced Studies) को अधिक सुदृढ बनाया जाए और बडे विश्वविद्यालयों में एक छोटी-सी संस्था ऐसी बनाई जाए जो उच्चतम अंतर्राष्ट्रीय मानकों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखें ।
5. विद्यालयों के लिए अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा गुणवता पर विशेष बल दिया जाए ।
6. शिक्षा के पुनर्निर्माण में कृषि, कृषि में अनुसंधान तथा इससे सम्बन्धित विज्ञानों को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए ।

**शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (National policy on Education) -** मुख्यतः कोठारी आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1968 में भारत सरकार ने शिक्षा पर एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें निम्नलिखित तत्वों पर बल दिया गया थाः-

1. 14 वर्ष की आयु तक अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा ।
2. अध्यापकों के लिए पद तथा वेतन में वृद्धि ।
3. त्रि-भाषा फार्मूले को स्वीकार करना और क्षेत्रीय भाषाओं का विकास ।
4- विज्ञान तथा अनुसंधान की शिक्षा का समानीकरण (equalisation)
5. कृषि तथा उद्योग के लिए शिक्षा का विकास ।
6. पाठ्य-पुस्तकों को अधिक उत्तम बनाना और सस्ती पुस्तकों का उत्पादन ।
7. राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करना ।

# नवीन शिक्षा नीति, 1986

नवीन शिक्षा नीति का उद्देश्य हमारे गतिहीन समाज को ऐसे गतिशील समाज में परिवर्तन करना है, जिसमें विकास तथा परिवर्तन के प्रति वचनबद्धता हो । इस नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थेः-

1. 1986 की 36 प्रतिशत साक्षरता को 2000 ई. तक बढाकर 56 प्रतिशत करना ।
2. प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाना ।
3. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाना । लक्ष्य यह था कि 1990 तक 10 प्रतिशत विद्यार्थी इसकी परिधि में आ जाएं और 1995 तक 25 प्रतिशत ।
4. उच्च शिक्षा में सुधार लाना ताकि अर्थव्यवस्था की आधुनिकीकरण तथा सार्वभौमिकता में विद्यमान चुनौतियों का सामना करने के लिए जन शक्ति को प्रशिक्षित किया जा सके ।
5. शिक्षा का सामाजिक प्रसंग होना चाहिए और पाठ्यचर्या ऐसी बनाई जाए जिससे विद्यार्थियों के मन में संविधान में दिए गए उत्तम सिद्धांतों को विद्यार्थी अपनायें अर्थात्ः-
   - वे राष्ट्रीय विरासत में गौरव  अनुभव करें ।
   - वे धर्म निरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रति वचनबद्ध हों ।
   - वे देश की एकता तथा अखण्डता के प्रति अनुरक्त हो ।
   - वे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिपति के नियम में कट्टर विश्वासी बन जाएं ।

# सुधार आंदोलन

## पृष्ठभूमि

19 वीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुधार आंदोलनों के प्रसार का मुख्य कारण पश्चिमी शिक्षा और उदार विचारों का प्रसार था। ये सुधार आंदोलन बंगाल में प्रारंभ होकर पूरे देश में फैल गए।

उल्लेखनीय है कि ये आन्दोलन अलग-अलग समय में विशिष्ट क्षेत्रों, विभिन्न धर्मों तक सीमित थे, किन्तु इनमें एकरूपता के तत्व भी विद्यमान थे।
उन्नीसवीं सदी में दर्शन, साहित्य, विज्ञान, राजनीति और सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में हुई सामाजिक-बौद्धिक क्रांति को भारतीय पुनर्जागरण के रूप में जाना जाता है। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज में कुछ धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुए जिन्होंने भारतीय समाज के स्वरूप परिवर्तन के साथ ही उसका आधुनिकीकरण भी किया।

18वीं-19वीं शताब्दी में भारत की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक,शैक्षणिक एव राजनीतिक स्थितिः

- धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक व्यवहारों के मध्य अंतः सम्बंध एव अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं के निष्पादन में जाति का एक महत्वपूर्ण कारक होना, तात्कालिक समाज की महत्वपूर्ण विशेषता थी
- संस्कार और धर्म आधारित जटिल वर्ण व्यवस्था एवं जातीय अभिमान ने समाज को उच्च एवं निम्न वर्गो में बाँट रखा था और प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसके वर्ण(जाति) से किया जाता था। इस व्यवस्था ने समाज को इतने टुकडों में बाँट दिया था कि वह निष्क्रिय और शक्तिहीन हो चुका था। हिन्दू समाज का यह निचला वर्ग सामाजिक सम्मान और आर्थिक सुविधाओं के लिए ईसाई धर्म स्वीकार कर रहा था।
- इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के सामाजिक नियंत्रण, अंधविश्वास, धार्मिक कट्टरता, अंध नियतिवाद, छूआछूत प्रथा जैसे कारक भी विद्यमान थे जिसने समाज को जड बना दिया था।
- महिलाओं की स्थिति सबसे ज्यादा चिंताजनक थी। समाज में सती प्रथा, बाल विवाह, कन्या शिशु हत्या आदि जैसी क्रूर प्रथाएँ विद्यमान थी, विधवा पुनर्विवाह वर्जित था। लडकी का जन्म दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था, उसका विवाह एक बोझ के समान था और विधवा होने पर तो वह समाज के लिए अशुभ ही हो जाती थी।
- संचार एवं यातायात के साधनों की सीमित उपलब्धता होने के कारण सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता निम्न थी। सामाजिक गतिशीलता निम्न होने के कारण लोगों में क्षेत्रीय लगाव (क्षेत्रीय दंभ) अधिक था। प्रत्येक स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता था।
- शैक्षणिक स्थिति निम्न थी तथा यह सीमित होने के साथ अधिकतर धर्म आधारित थी, जिसमें फारसी और संस्कृत भाषा का वर्चस्व था एव उक्त भाषाओं पर कुछ विशेष वर्ग का एकाधिकरण था।
- इसी काल में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति में सुदृढीकरण हुआ एवं यह एक अखिल भारतीय स्वरूप लेने लगा था।
  सुधारवादी आन्दोलनों ने उपर्युक्त तत्वों को एक पतनशील समाज के लक्षणों के रूप में चिन्हित करते हुए आधुनिकीकरण के लिए एक सामाजिक वातावरण के निर्माण का कार्य आरम्भ किया।
- 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान अंग्रेजों द्वारा भारत की विजय ने कुछ गंभीर कमजोरियों और साथ ही भारतीय सामाजिक संस्थाओं की कमियों को भी उद्घाटित किया। वास्तव में इसके प्रति लोगों की प्रतिक्रिया अलग-अलग थी, किन्तु इन सबके बावजूद सामाजिक और धार्मिक जीवन में सुधार को सभी आवश्यक मानते थे।